THE TIMES OF INDIA

Date:05-12-20

Distroting A Great Religion

FIR against Netflix film betrays not just intolerance but also ignorance about a Hinduism

Pavan K Varma, [The writer is an author and former diplomat]

In the rather lacklustre Netflix adaptation of Vikram Seth's A Suitable Boy the main protagonist, Lata, is shown kissing a Muslim boy with a temple in the background. Gaurav Tiwari, president of the BJP's Yuva Morcha, indignantly filed an FIR accusing Netflix of 'deliberate or malicious acts intended to outrage religious feelings'. The police in BJP ruled Madhya Pradesh where the FIR was filed, backed by the state's home minister, promptly took cognisance of the 'offence' which is punishable by a prison term of three years, or fine, or both.

I have delved deep into Hinduism and I am, therefore, dismayed at the way BJP and RSS, which claim to be pro-Hindu, are allowing their agenda to be consistently hijacked by this kind of ignorant bigotry which is an affront to all right thinking Hindus.

Are Tiwari, and those backing him, against kissing, or against kissing with a temple in the background, or a Hindu woman kissing, or a Hindu woman kissing a Muslim man? If they are against kissing, then they should immediately read the Bhagvata Purana, Vishnu Purana, Kama Sutra, Kalidasa, Jayadeva's Gita Govinda, Bhartrihari, Bilhana, Chandidasa, Bihari, Vidyapati, even Tulsidas where he describes the power of Kamadeva – and scores of other classics written by Hindu writers – which celebrate desire with a sensuous verve that has few parallels in world literature.

However, reading is not everybody's cup of tea. Perhaps, then, they could take some time off from their mindless intolerance to try and understand the remarkably balanced view of life that Hinduism has always espoused. In the Hindu world view the four purusharthas or goals of life are dharma, artha (material well-being), kama (physical sensuality) and moksha (salvation).

The Thirukkural, also known affectionately as the Tamil Veda, is divided into three sections, namely aram or righteousness, porul or wealth, and inbam or love. Hinduism must be one of the few religions which gives, as part of the highest goals of life, philosophical legitimacy to the balanced pursuit of desire, and celebrates its expression with an aplomb that makes mincemeat of the hypocritical prudery of the likes of Tiwari.

If the objection is to kissing with a temple in the background, the so-called custodians of morality must visit Konarak or Khajuraho, and understand the philosophy about why the temple itself is adorned with beautiful erotic sculpture. It was not Hindus but our British rulers who were appalled at Hinduism's frank but sensible acceptance of the sensual.

In British Raj opinion, the Hindus were 'tied to hateful, horrible beliefs and customs – unmentionable thoughts'; their world of darkness was filled with 'lust'; their culture had 'no moral codes'; their form of worship was 'to a very large extent disgusting and even immoral'; and, they suffered from 'unparalleled sexual degradation'. The Christian Literary Society in Madras even filed a case in 1862 against Krishna himself for encouraging 'adultery and fornication'. Fortunately, the court could not do much for lack of evidence!

The colonial critique was an illiterate assessment of Hinduism's enlightened accommodation of kama as part of a profound exploration of the highest spiritual truths. Amazingly, in a truly ironical twist, the Hindu ultra-right, parroting the Victorian morality of our erstwhile rulers, is protesting kissing, and goes about haranguing youngsters in parks, in the name of 'protecting' Hinduism. Ignorance certainly makes very strange bedfellows!

Besides, the patriarchal mindset of such critics fail to understand the tradition of strong women within Hinduism. Gender discrimination may be widespread today, but equally, there are powerful role models in our past of self-willed women clear about following their choices.

The Upanishads speak of Gargi, who was unyielding in her fearless debate with sage Yagnavalkya, and of Maitreyi who held her own in discussing the intricacies of metaphysics with her husband; Ubhaya Bharti confidently questioned the great Adi Shankaracharya himself on the art of making love; Andal, Mirabai, and Karaikkal Ammaiyaar of the bhakti period pursued their own path defying all conventional mores; the scintillating Mahadeviyakka in the 12th century left her husband and even discarded her clothes; covered only by her tresses she had a remarkable dialogue on the basis of equality with Basavanna and Allama Prabhu, leaders of the powerful Virashaiva Lingayat movement, who respectfully admitted her in their sect.

Our Constitution gives the sacrosanct right to consenting adults to marry anyone of any faith. Forced or fraudulent religious conversion is wrong, and is punishable under existing laws, without the need for the anti 'love jihad' law which demonises Muslim men and infantilises Hindu women, with the clear aim of fanning religious hatred.

The problem with the ultra-Hindu right is that its aggression is in inverse proportion to its knowledge. These self-anointed guardians of Hinduism are trying to make it run on Talibani diktats. This kind of debasement of the conquering eclecticism of the sanatan dharma, and it's nuanced audacity of thought, is as big a setback for it as the Turkic invasion or the British conquest.

There were leaders in the BJP earlier – Atal Bihari Vajpayee, Arun Jaitley, Sushma Swaraj – who could perhaps have stemmed this unlettered fanaticism. But even in their absence, Hindus must urgently resolve to prevent the hijacking of their great religion by those who know so little about it.

दैनिक भास्कर

Date:05-12-20

यह 1991 जैसा पल है, आंदोलन से दूसरी हरित क्रांति को न मारें

गुरचरण दास, (स्तंभकार और लेखक)

मंडियों के खरीद एजेंट हैं, जिनका 1500 करोड़ रुपए सालाना कमीशन का नुकसान होगा। साथ ही पंजाब के अमीर किसान पंजाब के किसानों के मौजूदा आंदोलन में कई सबक हैं। उनमें से एक है कि राजनीति छोटा खेल है, एक 20-20 मैच, जबकि अर्थव्यवस्था लंबा, पांच दिवसीय टेस्ट मैच है। पंजाब के किसान 20-20 खेल रहे हैं और सरकार टेस्ट मैच। इस बेमेलपन के कारण दूसरा सबक यह है कि लोकतंत्र में सुधार मुश्किल है। एक लोकवादी एक रुपए प्रतिकिलो चावल देने का वादा कर सुधारक को चुनाव में हरा सकता है। इसीलिए, सफल सुधारक, सुधारों को बेचने में ज्यादा समय खर्च करता है, उन्हें लागू करने में कम। भारत के सुधारकर्ता इस मामले में असफल रहे हैं और इसीलिए 1991 से 29 साल बाद भी भारत में सुधार चुपके से होते हैं और भारतीय अब भी सोचते हैं कि सुधार अमीरों को अमीर और गरीबों को गरीब बनाते हैं, जबकि इसके विपरीत कई प्रमाण हैं।

प्रधानमंत्री मोदी यह सबक भूल गए और जून में तीन कृषि कानूनों को बनाने में देश का समर्थन हासिल नहीं किया। उनकी सरकार ने विपक्ष, राज्यों या किसान संगठनों से बात किए बिना, संसद के जरिए कानून थोपने का रास्ता चुना। इसके ये अफवाहें फैलीं कि न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) व सरकारी खरीद बंद हो जाएगी। वे अब भी इसे सुधार सकते हैं। तीसरा सबक यह है कि जब बहुसंख्यक शांत और असंगठित हों तो छोटे, संगठित और वित्तपोषित समूह लोकतंत्र में राष्ट्रीय हित को लूट लेते हैं। आंदोलन के पीछे आढ़तिया, कृषि उपज विपणन समिति (एपीएमसी) हैं, जो भारत के उन 6% किसानों का हिस्सा हैं, जिन्हें एमएसपी का लाभ मिलता है। दोनों शक्तिशाली हैं। आढ़तिया चुनावों में पैसा लगाते हैं और अक्सर राजनेता और कृषि संघों के नेता होते हैं।

तीन कृषि बिल किसानों को तीन आधारभूत आजादी देते हैं। पहली, फसल कहीं भी बेचने की आजादी, जिससे मंडी के कार्टल का एकाधिकार खत्म होगा। दूसरी, स्टॉक रखने की आजादी, जिसमें अब तक आवश्यक सामग्री अधिनियम के तहत स्टॉक करने की सीमा के कारण बाधा आती थी। तीसरी, किसानों को वायादा बाजार अनुबंध करने की और अपना

जोखिम व्यापारी को देने की आजादी, जिससे उम्मीद है कि अलाभकारी भूमि को अन्य काम के लिए देने और लाभ साझा करने की आजादी मिलेगी।

एपीएमसी एक बेकार संस्थान है, जिसे किसान की सुरक्षा के लिए बनाया गया था, पर वही शोषण करने वाली बन रही है। एकाधिकार कार्टेल किसान की उपज की कम कीमत तय करते हैं, जिससे बिक्री प्रभावित होती है। सुधारों ने यह एकाधिकार तोड़ा है और जून के बाद से मंडी के बाहर बिक्री में इजाफा हुआ है, जबकि मंडी बिक्री में 40% गिरावट आई है। इस सुधार के बाद निर्यात पर भी स्थिर नीति की जरूरत है। मौजूदा 'शुरू करो-बंद करो' नीति के कारण हाल ही में प्याज के निर्यात पर रोक लग गई थी। यही कारण है कि किसान एमएसपी के लिए लालायित रहते हैं।

पंजाब के किसानों व संघों की प्रमुख मांग है कि एमएसपी को कानूनी अधिकार बनाया जाए। यह बुरा विचार है क्योंकि इससे पंजाब के किसानों को वह उगाएंगे जो लोग नहीं चाहते। नतीजतन गेहूं व चावल का अतिरिक्त और दाल का कम उत्पादन होगा। हर साल देश अतिरिक्त अनाज उत्पादन के बोझ में दब जाता है। एमएसपी के कारण पंजाब का किसान पानी गटकने वाले चावल उगाता है, जिससे उसकी मिट्टी को नुकसान होता है, जलस्तर कम होता है। पंजाब के किसान का दोष नहीं है। वह वही उगा रहा है, जिसके लिए उसे प्रोत्साहन राशि मिल रही है।

ये सुधार ज्यादा उत्पादकता से किसान की आय बढ़ाना चाहते हैं। भारतीय खेतों की पैदावार प्रतिद्वंद्वियों से एक तिहाई ही है। चीन में भारत की तुलना में आधी कृषियोग्य भूमि है, जबकि पैदावार हमसे दोगुनी है। समस्या यह है कि 80% भारतीय किसानों के पास दो हेक्टेयर से कम जमीन है। वे वैज्ञानिक विधियों के इस्तेमाल और उच्च मूल्य वाली फसलों से अपनी उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। लेकिन इसके लिए पूंजी व तकनीक का संचार जरूरी है। हालांकि किसान के पास इसके लिए पैसा नहीं है। न ही सरकार के पास। इसीलिए, अगला सुधार ऐसा हो जो किसानों को अपनी जमीन ऐसे कृषि-पेशेवरों को लीज पर देने की आजादी दे, जिनके पास पूंजी और तकनीक हो और बदले में वे उसी जमीन में साझेदार और काम करने वाले बन सकें, जिससे दूसरी हरित क्रांति का आधार तैयार हो।

इस परिदृश्य का नकारात्मक पहलू यह डर है कि बड़े बिजनेस कृषि पर कब्जा कर लेंगे। इसका जवाब है कि किसान खुद को कोऑपरेटिव, किसान-उत्पादक संगठनों, जैसे अमूल, के जरिए संगठित करें। किसानों का एमएसपी खत्म होने का दूसरा डर निराधार है। सरकार को किसानों को बताना चाहिए कि खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत लाखों राशन दुकानों के लिए चावल और गेहूं की खरीद करने की जरूरत होगी ही। कोई भी सरकार खाद्य सुरक्षा हटाने का राजनीतिक जोखिम नहीं लेगी। इसलिए किसान निश्चिंत रहें। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि एमएसपी कानूनी अधिकार बन जाए। एक आदर्श दुनिया में, कृषि सब्सिडियों के पूरे तंत्र की जगह 'किसानों के लिए न्यूनतम आय' को ले लेनी चाहिए। लेकिन फिलहाल तो ऐसा नहीं होगा।

दैनिक जागरण

Date:05-12-20

मुखर होती भारत की विदेशी निति

हर्ष वी पंत, (लेखक ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में रणनीतिक अध्ययन कार्यक्रम के निदेशक हैं)

मोदी सरकार के कृषि कानूनों पर किसानों के एक वर्ग द्वारा किए जा रहे विरोध पर कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो की टिप्पणी न केवल अनुचित, बल्कि हैरान करने वाली भी है। ट्रूडो ने प्रदर्शनकारी किसानों के साथ भारतीय सुरक्षा बलों के रवैये पर चिंता जाहिर करते हुए कहा था कि उनकी सरकार हमेशा से शांतिपूर्ण विरोध-प्रदर्शन की समर्थक रही है। उनका बयान अनुचित इस कारण है कि यह भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप है और हैरान करने वाला इसलिए कि यह एक परिपक्व लोकतंत्र माने जाने वाले देश के नेता ने दिया है। वैसे कनाडा और भारत का संघीय ढांचा कमोबेश एक जैसा है। वहीं भारत सरकार किसानों के साथ वार्ता कर उनकी आपत्तियों के निराकरण में भी जुटी है, जैसा किसी समृद्ध लोकतंत्र में होता है।किसानों का विरोध-प्रदर्शन भी अभी तक पूरी तरह शांतिपूर्ण रहा है, जिसमें किसी अप्रिय घटना का कोई समाचार नहीं आया। इस प्रकार पूरे परिदृश्य में ऐसा कुछ नहीं, जिस पर अंतरराष्ट्रीय बिरादरी को ध्यान केंद्रित करना पड़े। यह विशुद्ध रूप से भारत का अंदरूनी मसला है और जैसा कि किसी जीवंत एवं गतिशील लोकतंत्र में होता है, जहां वार्ता और विमर्श के माध्यम से हल निकाल लिया जाता है, वैसा ही इस मुद्दे का भी निकल जाएगा। जाहिर है कि इसमें किसी भी दूसरे देश को दखलंदाजी करने का कोई हक नहीं।

भारत ने ट्रूडो के बयान को अविलंब खारिज करके उचित किया। विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता अनुराग श्रीवास्तव ने दो-टूक लहजे में कहा कि यह टिप्पणी अधकचरी जानकारी पर आधारित, सच्चाई से परे और एक लोकतांत्रिक देश के मामलों में हस्तक्षेप है। सरकार ने केवल बयानबाजी से मामले का पटाक्षेप नहीं किया, बल्कि शुक्रवार को विदेश मंत्रालय ने भारत में कनाडा के उच्चायोग को तलब कर चेतावनी दी कि ऐसी टिप्पणी द्विपक्षीय रिश्तों पर बुरा असर डालेगी। भारत-कनाडा के रिश्तों में पहले से ही कोई खास गर्मजोशी नहीं है, जिसमें ऐसे बयान और कड़वाहट घोलने का ही काम करेंगे।फिर आखिर ट्रूडो ने संबंधों को दांव पर लगाने का जोखिम क्यों लिया? इसकी पड़ताल में यही जवाब मिलेगा कि घरेलू राजनीति की मजबूरियों को देखते हुए ही ट्रूडो ने यह कदम उठाया। चूंकि प्रदर्शनकारी किसान मुख्य रूप से पंजाब के हैं तो ट्रूडो कनाडा में बसे पंजाबी सिखों से हमदर्दी दिखाकर उनके बीच अपना समर्थन और बढ़ाना चाहते हैं। कनाडा में पांच लाख से अधिक सिख हैं और कुल आबादी में उनकी करीब 1.4 प्रतिशत हिस्सेदारी है। ऐसे में सभी दल इस तबके को लुभाना चाहते हैं और इनमें ट्रूडो की लिबरल पार्टी खासी आगे रहती है। ट्रूडो खुद इसे जाहिर करते रहे हैं। कनाडा की कमान संभालते हुए उन्होंने गर्वोक्ति के साथ कहा था कि उनके मंत्रिमंडल में इतने सिख मंत्री हैं, जितने भारत सरकार में भी नहीं। यहां तक कि कनाडा में वह जस्टिन 'सिंह' ट्रूडो के नाम से मशहूर हैं।

अतीत से ही भारत-कनाडा संबंधों में कुछ खटास रही है। इस खटास की एक वजह कनाडा द्वारा कुछ अलगाववादी खालिस्तानी समर्थकों को शह देना भी रहा है, जिसकी चिंगारी रह-रहकर अभी भी भड़कती रहती है। कनाडा की राजनीतिक बिरादरी में ऐसे तत्वों की सक्रियता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर कनाडा ऐसे स्वरों का बचाव भी करता है, लेकिन भारतीय सुरक्षा एजेंसियों के सदस्यों को वीजा देने से इन्कार करने से उसकी मंशा पर सवाल जरूर उठते हैं। यही कारण रहा कि वर्ष 2015 तक 42 वर्षों के दौरान किसी भी भारतीय प्रधानमंत्री ने कनाडा का दौरा नहीं

किया। वर्ष 2015 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने द्विपक्षीय रिश्तों की इस बेरुखी को दूर करने का बीड़ा उठाया। वर्ष 2015 में वह कनाडा गए। यह चार दशकों बाद भारतीय प्रधानमंत्री पहला दौरा था। तत्कालीन कनाडाई प्रधानमंत्री स्टीफन हार्पर ने बहुत आत्मीयता के साथ मोदी की मेहमाननवाजी की। टोरंटो के रिको कोलिसियम स्टेडियम में पीएम मोदी ने भारतवंशियों को संबोधित भी किया। उस दौर में कई अहम साझेदारियों पर सहमति बनी। इसका ही परिणाम रहा कि वर्ष 2018 में द्विपक्षीय व्यापार 6.3 अरब डॉलर तक पहुंचा, जो 2019 में 10 अरब डॉलर के आंकड़े को पार कर गया। हालांकि दोनों देशों में सहयोग की भारी संभावनाओं को देखते हुए यह काफी कम है, पर ट्रूडो के रवैये से यह बढ़ने के बजाय और घट सकता है।

हालांकि ट्रूडो की बदजुबानी का यह पहला वाकया नहीं है। इससे पहले भी अपने बयानों से वह भारत को कुपित कर चुके हैं। इसका असर यह हुआ कि वर्ष 2018 में जब वह सपरिवार भारत के अनौपचारिक दौरे पर आए तो भारत सरकार ने भी उन्हें कोई तवज्जो नहीं दी। फ्रांस में हुए हालिया आतंकी हमले के बाद फ्रांसीसी राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों के सख्त रुख के विपरीत ट्रूडो ने अपने नरम तेवरों का बेसुरा राग छेड़ा, जिसके कारण वह निशाने पर भी रहे। उनके रवैये से यही लगता है कि वह वास्तविकता को दरकिनार करते हुए तथाकथित उदारवाद के पोस्टर बॉय या ब्रांड अंबेसडर बनना चाहते हैं। हालांकि इसमें भी उनका दोहरा रवैया ही दिखता है कि वह भारत जैसे लोकतांत्रिक देश को तो उपदेश देते हैं, लेकिन उइगर मुसलमानों का दमन करने वाले तानाशाह चीन के मामले में चुप्पी साधे रहते हैं।

जो भी हो, इस पूरे प्रकरण से भारतीय विदेश नीति के नए तेवर भी दिखते हैं। भारत ने अपने आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप पर मौन रहने की परंपरागत चुप्पी तोड़ी है। अब वह मुखरता से और त्वरित गति से जवाब देने लगा है। फिर चाहे ट्रंप द्वारा कश्मीर में मध्यस्थ बनने की पेशकश के दावे को तुरंत खारिज करना हो या कश्मीर से लेकर सीएए पर तुर्की और मलेशिया को जवाब देना हो। भारत की कार्रवाई केवल जुबानी नहीं है, बल्कि उसके मामले में टांग अड़ाने वाले देशों को इसकी कीमत भी चुकानी पड़ रही है। तुर्की के अनर्गल प्रलाप के बाद पीएम मोदी ने अपना तुर्की दौरा ही रद कर दिया था, जिसमें कई समझौतों पर बात आगे बढ़नी थी। वहीं मलेशिया को खाद्य तेल निर्यात के मोर्चे पर इसकी कीमत चुकानी पड़ी। यहां तक कि चीन ने भी इसकी तपिश झेली। कुल मिलाकर यह नए भारत की नई विदेश नीति है, जिसमें कोई देश अपने जोखिम पर ही भारत के अंदरूनी मामलों में दखल देने का दुस्साहस करे। शायद देर-सबेर ट्रूडो को भी यह बात समझ आ जाए कि नजदीकी फायदे के लिए वह दूरगामी नुकसान कर बैठे।

जनसत्ता

Date:05-12-20

बचाना होगा छोटी नदियों को

अतुल कनक

आमतौर पर गर्मी ऋतु में देश के कई हिस्सों से इस आशय की खबरें आती हैं कि छोटी नदियां सूख गईं या कुछ बड़ी नदियों में पानी की मात्रा बहुत कम हो गई। लेकिन दक्षिण पूर्वी राजस्थान के कोटा जिले के सांगोद क्षेत्र में बहने वाली उजाड़ नदी इस वर्ष नवंबर महीने में ही सूख गई। उजाड़ चंबल की सहायक नदी है और अंचल के बहुत सारे गांवों के लिए जीवनरेखा है। आमतौर पर उजाड़ नदी में इतना पानी रहता था कि उससे जुड़े गांवों में आवागमन सुनिश्चित करने के लिए पचपन मीटर लंबा पुल बनाया गया है। लेकिन अपने जल से इलाके को विकास का वरदान सौंपने वाली यह नदी समाज की अपने प्रति असंवेदनशीलता के कारण अब अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए छटपटाती-सी प्रतीत होती है।

दरअसल, अपने प्रति संवेदनहीनता का दंश झेल रही उजाड़ नदी देश की अकेली नदी नहीं है। देश में ऐसी सैकड़ों सहायक नदियां होंगी जो इस तरह असमय सूख कर दम तोड़ रही हैं और मनुष्य के लिए जल संकट के खतरे की घंटी बजा रही हैं। लेकिन लगता है हम इस खतरे को अभी भी गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। गंगा को तो हमारी मान्यताओं में बहुत पवित्र माना जाता है। सनातन मान्यताओं के अनुसार व्यक्ति को अंतिम समय यदि गंगाजल की दो बूंदों का भी आचमन मिल जाए तो सांसारिक बंधनों से उसकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। लेकिन देवी माने जाने वाली गंगा नदी स्वयं अब प्रदूषण के दुर्दांत प्रतीत होते असुर से संघर्ष करने पर विवश है। पिछले दिनों यमुना में प्रदूषण के कारण उठे झागों की तस्वीरें सोशल मीडिया पर खूब चलीं। सदा सलिला कही जाने वाली चंबल नदी के पानी को भी एक परीक्षण में कई स्थानों पर पीने योग्य नहीं पाया गया है। कावेरी नदी चालीस प्रतिशत से अधिक अपना जलप्रवाह खो चुकी है, तो कृष्णा और गोदावरी नदी में पानी की मात्रा दो दशक पहले की तुलना में बहुत कम हो गई है। जब देश की महनीय नदियों का यह हाल है तो छोटी नदियों और बरसाती नदियों की स्थिति का अनुमान तो आसानी से लगाया जा सकता है।

यह स्थिति इसलिए चिंता पैदा करती है क्योंकि हमारी पानी की जरूरत का पैंसठ प्रतिशत से अधिक हिस्सा नदियां ही पूरा करती हैं। पानी केवल पीने या रोमजर्रा की जरूरतों को पूरा करने या सिंचाई के काम ही नहीं आता, अपितु

औद्योगिक उत्पादन में कच्चे माल के परिशोधन सहित अनेक क्रियाओं में पानी ही जरूरी होता है। ऐसे में जिन देशों को प्रकृति ने नदियों का वरदान दिया है, उन्हें नदियों के अस्तित्व के प्रति संवेदनशील होने की जरूरत थी। लेकिन दुर्भाग्य से विकास की आपाधापी ने नदियों के प्रति हमारी संवेदनशीलता को छीन लिया। हमने नदियों को बचाने और संरक्षित रखने के बजाय के उनके प्रवाह क्षेत्र में ही बस्तियां बनानी शुरू दीं। यह तो समझ आता है कि नदियों के प्रवाह पर बांध बनाना जीवन की जरूरत था, लेकिन नदियों के किनारों पर अतिक्रमिण कर लेना या उनमें मनमाने तरीके से गंदगी प्रवाहित करना कैसे उचित कहा जा सकता है? स्थिति यह हो गई कि हम नदियों को देवी मान कर पूजते तो रहे, लेकिन उनकी पवित्रता से खिलवाड़ भी करते रहे। लेकिन ऐसा नहीं है कि नदियों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार भारत में ही हुआ। अपने सीमित संसाधनों से आकाश की अथाह ऊंचाई नापने की आपाधापी में कई विकासशील देशों ने नदियों की महत्ता को नजरअंदाज किया है। ब्राजील के रियो-दे जेनेरियो की सारापुई या सुपुई नदी कचरे से इस कदर भर गई है कि उस पर पैदल चला जा सकता है।

बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के सभी सोलह प्रखंडों से कोई न कोई नदी गुजरती है। लेकिन इन नदियों में से अधिकांश अपनी दुर्दशा पर आंखें बहा रहीं हैं। नदियों की अत्यधिक संख्या के कारण मिथिला को तो नदियों का मायका तक कह दिया जाता है। लेकिन इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है कि नदियां अपने मायके में ही दुख के साथ बह रही हैं। बिहार की बूढ़ी गंडक, लखनदेई, टिमदा, झझा, सियारी, कदाने, बाया, डंडा, मनुषमारा जैसी नदियां या तो दम तोड़ चुकी हैं या दम तोड़ने के कगार पर हैं। झारखंड में पिछली गर्मियों में एक सौ तैंतीस नदियों के सूखने की खबरें आई थीं। पलामू जिले की ही कोयल, सदाबह, अमानत नदियां अस्तित्व के लिए जूझती दिखीं। गुमला जिले में नदी के प्रवाह क्षेत्र में बच्चे क्रिकेट खेलते हुए दिखे।

किसी नदी के सिकुड़ने या सूखने का दर्द क्या होता है, यह उन इलाकों में जाकर जानना चाहिए जिन इलाकों ने इस स्थिति का सामना किया है। राजस्थान के रेगिस्तानी इलाके से बेहतर किसी नदी के महत्त्व को कहां समझा जा सकता है? कहते हैं कि पौराणिक नदी सरस्वती का प्रवाह इसी क्षेत्र में था। शोधकर्ताओं के अनुसार करीब डेढ़ सौ साल पहले भी राजस्थान के इस इलाके के प्रमुख शहर बीकानेर के पास नाल गांव में एक नदी बहती थी, लेकिन धीरे-धीरे वह लुप्त हो गई। जर्मनी के द मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट फॉर द साइंस आफ ह्यूमन हिस्ट्री, तमिलनाडु के अन्ना विश्वविद्यालय और कोलकाता के भारतीय विज्ञान शिक्षा और शोध संस्थान (आइआइएसईआर) जैसे संस्थानों से जुड़े विद्वानों ने यह शोध किया था। इससे कुछ ही दूर स्थित सीकर जिले की साइवार की पहाड़ियों से निकलने वाली साहबी नदी की तो सौ से अधिक उपनदियां थीं। इस नदी के प्रवाह का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस पर मासनी बांध बनाया गया। लेकिन यह नदी भी अब अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है। कुछ विद्वानों ने पौराणिक दृष्दावती नदी के रूप में इसे पहचाना है। सोता, कृष्णावती, दोहन आदि इस नदी की उपनदियां थीं।

एक नदी के रूठने के डर से दन दिनों दक्षिण अमेरिकी देश पैराग्वे भी गुजर रहा है। यहां की राजधानी असुनशियोन के पास से गुजरने वाली नदी पराग्वे ही इस देश को समुद्र से जोड़ने वाला एकमात्र विकल्प थी। इस देश के लिए पराग्वे नदी के महत्त्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसी नदी के नाम पर देश का नाम भी रखा गया। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी- नासा द्वारा पिछले दिनों जारी एक तस्वीर में यह दिखाया गया है कि कैसे राजधानी असुनशियोन के आसपास नदी का इलाका सूख गया है। पराग्वे के लोक निर्माण विभाग के निदेशक जॉर्ज वेगार्रा ने पिछले दिनों कहा भी कि 'नदी सूखने का असर सीधा असर देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है, क्योंकि पराग्वे का बावन

फीसद आयात और लगभग पचहत्तर प्रतिशत निर्यात नदी के रास्ते से ही होता है।' नदी के सूखने ने दूरस्थ इलाकों की बस्तियों में पेयजल आपूर्ति को भी प्रभावित किया है।

नदियां मानव सभ्यता की उन्नायक रही हैं। प्राय: सभी प्राचीन सभ्यताओं का विकास किसी नदी घाटी में हुआ है। लेकिन अब नदियां संकट में हैं। नदियों का संकट में होना आमजन के लिए भी संकट का कारण बन सकता है। सन 1951 में हमारे यहां प्रतिव्यक्ति चौदह हजार एक सौ अस्सी लीटर पानी सहजता से उपलब्ध था। लेकिन अनुमान है कि सन 2050 तक पानी की उपलब्धता तीन हजार एक सौ बीस लीटर प्रतिव्यक्ति ही रह जाएगी। यह स्थिति डराती है। देश में जहां छोटी नदियों के प्रवाह क्षेत्र अतिक्रमण के शिकार हो गए हैं, वहीं दो सौ पैंसठ मझोली नदियां संकट में हैं। बड़ी नदियां भी प्रदूषण का शिकार हो रही हैं। ऐसे में समय की सबसे बड़ी जरूरत है कि हम नदियों के प्रति संवेदनशील हों, अन्यथा समूची सभ्यता के लिए आने वाले दिन सचमुच बहुत कठिन होंगे।